योजना का सार

भारतीय संविधान का विकास : संवैधानिक संशोधन

संदर्भ

- कानूनी विशेषज्ञों एवं अनुभवी राजनेताओं के एक समूह द्वारा तैयार किया गया संविधान भारतीय लोकतंत्र की रीढ़ रहा है। यह न केवल शासन की एक विस्तृत प्रशासनिक मशीनरी की गारंटी देता है, बल्कि एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति का चार्टर भी है।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय संविधान का विकास

- वर्तमान संविधान ब्रिटिश शासन से विकसित हुआ है जिसके दौरान ब्रिटिश संसद ने कई अधिनियम बनाए, जिन्होंने भारत को सरकार एवं प्रशासन का ढाँचा प्रदान किया। इन अधिनियमों में से भारत परिषद् अधिनियम, 1909; भारत सरकार अधिनियम, 1919 और भारत सरकार अधिनियम, 1935 को ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के संवैधानिक विकास में प्रमुख मील का पत्थर माना जाता है।
- भारत सरकार अधिनियम, 1935 वर्तमान संविधान को अपनाने तक ब्रिटिश भारत के संविधान के रूप में कार्य करता था। संविधान का 65% हिस्सा केवल इस अधिनियम से लिया गया है।

संघीय संविधान का संवैधानिक संशोधन

- एकात्मक संविधानों की तुलना में संघीय संविधानों में संशोधन करना अधिक कठिन होता है। इन्हें एक कठोर प्रक्रिया द्वारा संशोधित किया जाना होता है, जिसके लिए संघीय संसद में विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। कभी-कभी राज्यों द्वारा इसका अनुसमर्थन भी आवश्यक होता है।

- अब तक हमारे संविधान में 106 संशोधन किए जा चुके हैं। इतने संशोधनों के बाद भारतीय संविधान अपने मूल स्वरूप से काफी बदल गया है। आचार्य कृपलानी ने टिप्पणी की थी कि 42 वां संविधान संशोधन, 1976 के बाद उन्हें केवल संशोधन ही दिखाई दे रहे थे, कोई मूल संविधान नहीं।

संविधान संशोधनों की आवश्यकता

- संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ है जिसे उन लोगों की बदलती सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करना चाहिए, जिनकी सेवा के लिए इसे बनाया गया है। बदलते समय एवं परिस्थितियों के साथ लोगों की आकांक्षाएँ भी बदलती हैं और इन बदलावों को संविधान में संशोधन करके प्रतिबिंबित किया जाना चाहिए, अन्यथा यह एक प्रासंगिक दस्तावेज़ नहीं रह जाएगा तथा पुराना हो जाएगा।

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया

- भारतीय संविधान में संशोधन तीन तरीकों से किया जा सकता है:
- संसद द्वारा साधारण बहुमत से पारित एक साधारण कानून के द्वारा।
- अनुच्छेद 368 में दी गई एक विशेष प्रक्रिया का पालन करके, जिसके लिए संसद के दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से संशोधन विधेयक पारित करना आवश्यक है। अधिकांश संशोधन इसी प्रक्रिया से किए जाते हैं।
- संसद द्वारा दो-तिहाई बहुमत से संशोधन विधेयक पारित करके और साथ ही कम-से-कम आधे राज्यों द्वारा इसका अनुसमर्थन करके, यदि विधेयक संघीय प्रावधानों को प्रभावित करने वाले प्रावधानों में परिवर्तन करना चाहता है।

संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन की असीमित शक्ति का परीक्षण

- संसदीय संप्रभुता की धारणा के अनुसार, संसद अपनी संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने की असीमित शक्ति रखती है। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय ने दो मामलों में यही रुख अपनाया था: शंकरी प्रसाद मामला, 1951 और सज्जन सिंह मामला, 1964 में संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने के लिए संसद की असीमित शक्तियों को स्वीकार किया गया था, जिसमें मौलिक अधिकार भी शामिल थे।
- हालाँकि गोलकनाथ मामले, 1967 में न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद संविधान में किसी भी मौलिक अधिकार को कम नहीं कर सकती है। इसके प्रत्युत्तर में संसद ने वर्ष 1971 में 24 वां संशोधन अधिनियम पारित किया जिसने गोलकनाथ फैसले को पलट दिया। अनुच्छेद 13 एवं अनुच्छेद 368 में नए खंड जोड़कर यह स्पष्ट किया गया कि संसद मौलिक अधिकारों को भी संशोधित कर सकती है।

केशवानंद भारती मामला, 1973 और मूल संरचना का सिद्धांत

- यद्यपि भारतीय संविधान में 'मूल संरचना' शब्द का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, किंतु इसे सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती मामला, 1973 में गढ़ा था। इसमें न्यायालय ने संविधान की मूल विशेषताएँ बताई हैं-
  - संविधान की सर्वोच्चता
  - सरकार का गणतांत्रिक एवं लोकतांत्रिक स्वरूप
  - धर्मनिरपेक्षता

- शक्तियों का पृथक्करण
- कानून का शासन
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता
- राजनीति का संघीय चरित्र

➢ यद्यपि संसद के पास संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने का अधिकार है, किंतु वह ऐसे परिवर्तन नहीं कर सकती है जो संविधान के मूलभूत ढाँचे या आवश्यक विशेषताओं से समझौता करते हों। इस बाधा को 42वां संविधान संशोधन, 1976 में दूर करने का प्रयास किया गया, जिसने संसद को संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की अनुमति दी तथा इसे किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में चुनौती दिए जाने से सुरक्षित किया।

➢ मिनर्वा मिल्स निर्णय, 1980 में सर्वोच्च न्यायालय ने इसे निरस्त कर दिया और माना कि यह संविधान की मूल विशेषता को नष्ट करता है। यह मूल संरचना सिद्धांत का पहला अनुप्रयोग था, जिसे बाद में आई.आर. कोएल्हो मामले, 2007 में भी लागू किया गया। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संविधान की नौवीं अनुसूची में रखा गया कानून (विषय) न्यायिक समीक्षा से मुक्त नहीं है तथा मूल संरचना सिद्धांत के अंतर्गत जाँच के अधीन है।

➢ इस सिद्धांत को 99 वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 में लागू किया गया, जिसने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) बनाया। एन.जे.ए.सी. को निरस्त घोषित कर दिया गया क्योंकि इसने सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से संविधान की एक मूल विशेषता 'न्यायपालिका की स्वतंत्रता' को छीन लिया। इसके स्थान पर नियुक्ति की कॉलेजियम प्रणाली को बहाल किया गया।

1950 के बाद से ऐतिहासिक संवैधानिक संशोधन

- यद्यपि अब तक 106 संविधान संशोधन किए जा चुके हैं। इनमें निम्नलिखित संशोधन प्रमुख माने जाते हैं जिन्होंने संविधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए-
- **पहला संशोधन अधिनियम, 1951:** इस संशोधन का मुख्य उद्देश्य अनुच्छेद 19 (राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, शालीनता, आदि) में दिए गए विभिन्न आधारों पर बनाए गए कानूनों पर 'उचित प्रतिबंध' लगाना था। इसने ज़मींदारी प्रथा को भी समाप्त कर दिया और संविधान में 9 वीं अनुसूची शामिल की।
- **सातवाँ संशोधन अधिनियम, 1956:** इसका मुख्य उद्देश्य फज़ल अली समिति द्वारा अनुशंसित भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को लागू करना था।
- **बयालीसवाँ संशोधन अधिनियम, 1976:** इसे भारत के 'लघु संविधान' के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि इसने आपातकाल के दौरान संविधान में व्यापक एवं कठोर परिवर्तन किए थे। इसने अनुच्छेद 39 ए (नि:शुल्क कानूनी सहायता), 43 ए (उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी), 48 ए (पर्यावरण एवं वन्यजीवों की सुरक्षा) को जोड़कर प्रस्तावना व निर्देशक सिद्धांतों में संशोधन किया और संविधान में भाग-IV ए को शामिल करके मौलिक कर्तव्यों का प्रावधान किया।
- अनुच्छेद 74 में संशोधन करके राष्ट्रपति को 'मंत्रिपरिषद् की सलाह से बाध्य' बनाया गया। इसने अनुच्छेद 323 ए एवं 323 बी को नए भाग-XIV ए में शामिल करके न्यायाधिकरणों का भी प्रावधान किया।
- सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसने अनुच्छेद 368 में खंड (4) एवं (5) जोड़े, जिससे संसद को संविधान के किसी भी प्रावधान को संशोधित करने की असीमित शक्तियाँ मिल गई। आपातकाल के दौरान पारित इस संशोधन ने नागरिक स्वतंत्रता एवं न्यायपालिका की शक्तियों को कम कर दिया और मौलिक अधिकारों को कमज़ोर कर दिया।

- **चौवालीसवाँ संशोधन अधिनियम, 1978 :** यह संशोधन जनता पार्टी सरकार द्वारा 42वां संविधान संशोधन एवं आपातकाल की पृष्ठभूमि में लागू किया गया था। सर्वप्रथम इसने आपातकाल की घोषणा से संबंधित अनुच्छेद 352 में परिवर्तन किए। शब्द 'आंतरिक अशांति' जो एक अस्पष्ट अभिव्यक्ति थी और जिसका दुरुपयोग किया जा सकता था, को 'सशस्त्र विद्रोह' से बदल दिया गया। इसके अलावा, आपातकाल की घोषणा करने के लिए राष्ट्रपति को कैबिनेट की लिखित सलाह अनिवार्य कर दी गई। साथ ही, इसे एक महीने के भीतर संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से पारित किया जाना आवश्यक था।
- निवारक में विलंब के खिलाफ भी सुरक्षा उपाय किए गए थे जो तीन महीने से अधिक जारी नहीं रखा जा सकता था जब तक कि एक सलाहकार बोर्ड आगे की हिरासत की सिफारिश न करे। सबसे महत्त्वपूर्ण बदलाव संपत्ति के अधिकार में किया गया। जब तक यह मौलिक अधिकार बना रहा, तब तक सरकार के लिए सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए संपत्ति का अधिग्रहण करना चुनौतीपूर्ण बना रहा। अनुच्छेद 19 (1) (एफ) को हटाकर और अनुच्छेद 300 को नए अनुच्छेद 300ए में बदलकर इसे हमेशा के लिए हल कर दिया गया।
- इस प्रकार, आज संपत्ति का अधिकार केवल एक कानूनी अधिकार है, न कि एक मौलिक अधिकार। यदि किसी की संपत्ति अधिग्रहित की जाती है तो वह अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय से उपाय की मांग नहीं कर सकता है। हालाँकि, वह सामान्य न्यायालयों का रुख कर सकता है।
- **बावनवाँ संशोधन अधिनियम, 1985:** इस संशोधन से संविधान में दसवीं अनुसूची जोड़ी गई। यह उन आधारों का प्रावधान करती है जिन पर किसी विधायिका के सदस्य को दल-बदल के कृत्य के लिए अयोग्य ठहराया जा सकता है। इस अधिनियम को 91osa संशोधन द्वारा और मज़बूत किया गया, जिसने वर्ष 1985 के दल-बदल रोधी कानून को अधिक सशक्त बनाया।

- **इकसठवाँ संशोधन अधिनियम, 1988:** इस संशोधन का उद्देश्य भारत के युवाओं को चुनावी प्रक्रिया में शामिल करने के लिए मतदान की आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष करना था।
- **सत्तरवाँ एवं चौहत्तरवाँ संशोधन अधिनियम, 1992 :** इन दो संशोधनों ने भाग IX (पंचायत) और भाग IXए (नगरपालिकाएँ) जोड़कर ग्राम एवं शहरी दोनों स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) को संवैधानिक बना दिया है। 11वां व 12वां नामक दो नई अनुसूचियाँ जोड़ी गई, जो इन स्थानीय निकायों द्वारा किए जाने वाले कार्य के क्षेत्रों का विवरण देती हैं। इसने समय पर चुनाव, महिलाओं व अनुसूचित जातियों/जनजातियों का प्रतिनिधित्व, शक्तियों एवं वित्तीय संसाधनों का हस्तांतरण और प्रत्येक राज्य के लिए एक अलग चुनाव आयोग तथा वित्त आयोग बनाकर विकेंद्रीकृत लोकतंत्र की अवधारणा में क्रांतिकारी बदलाव किया है।
- **एक सौ एकवाँ संशोधन अधिनियम, 2016:** इस अधिनियम के माध्यम से 'एक राष्ट्र, एक कर' के नारे के तहत जी.एस.टी. व्यवस्था अस्तित्व में आई। इसने एक झटके में कर व्यवस्था को सरल बना दिया और इसे सहकारी संघवाद की दिशा में एक बड़ा कदम माना जाता है।
- **एक सौ छठवाँ संशोधन अधिनियम, 2023:** इसने आखिरकार लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का मार्ग प्रशस्त किया है। इस अधिनियम ने भारतीय महिलाओं को सशक्त बनाया है और हमारी विधायिकाओं को लैंगिक दृष्टि से अधिक प्रतिनिधित्व वाला बनाया। हालाँकि, यह अगली परिसीमन प्रक्रिया के बाद ही लागू होगा।

निष्कर्ष

- संवैधानिक संशोधनों ने भारत के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया है और लोगों के कल्याण के लिए संवैधानिक शाखा की पहुँच का विस्तार किया है। इन संशोधनों की प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :
- कई संशोधन केवल प्रक्रियात्मक प्रकृति के रहे हैं और उन्होंने केवल मौजूदा प्रावधानों पर ही विस्तार से प्रकाश डाला है।
- कुछ संशोधन प्रतिगामी एवं राजनीति से प्रेरित थे और उन्होंने अधिनायकवाद को जन्म दिया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 42वाँ संशोधन है। इसके अलावा, दल-बदल से निपटने वाला 52वां संशोधन भी अपने उद्देश्यों में काफी हद तक विफल रहा है।
- अधिकांश संशोधन दूरदर्शी रहे हैं और अपने उद्देश्यों को यथोचित रूप से पूरा किया है।

सामाजिक न्याय को बढ़ावा और भारतीय संविधान

संदर्भ

- ग्रैनविले ऑस्टिन जैसे विद्वानों ने भारतीय संविधान को सामाजिक क्रांति का माध्यम बताया है। संविधान सभा के सदस्यों ने इस बात को दर्शाया है कि किस प्रकार भारत के संविधान में समाज को नया रूप देने की शक्ति निहित है। अमेरिकी संविधानवाद की नींव सत्ता के प्रति गहरे अविश्वास पर आधारित थी जिसमें निरंकुश शासक सिर्फ एक उदाहरण था। इस प्रकार, इस संविधानवाद का औचित्य राजनीतिक सत्ता के अधिकार क्षेत्र को प्रतिबंधित करना, उस पर अविश्वास करना और उसे सीमित करना था।

भारत में संविधानवाद

- बीसवीं सदी में अधिकांश रूप से और विशेष तौर पर भारत में संविधानवाद इस प्रकार की संयमित एवं नियंत्रित सत्ता तथा राजनीति की अवधारणा का पालन नहीं करता है। यह संविधानवाद सत्ता की सीमा को परिभाषित करने के साथ-साथ उसके कार्यक्षेत्र का विस्तार करता है और इसे बढ़ावा देता है। भारतीय संविधान का उद्देश्य समाज को स्थापित सामाजिक वर्गीकरण की बाधाओं से मुक्त कराना और स्वतंत्रता समानता एवं न्याय के एक नए युग की शुरुआत करना था।
- आंबेडकर का मत है कि भारत में संवैधानिक नैतिकता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। आंबेडकर आगे यह तर्क देते हैं कि भारतीय संविधान को भारत सरकार अधिनियम, 1935 की निरंतरता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि 1935 के अधिनियम से अनेकों धाराएँ संविधान में शामिल किए जाने के बावजूद संविधान में लोकतंत्रीकरण की व्यवस्था पहले की व्यवस्थाओं से बहुत हद तक अलग थी।

सुधारवादी संविधानवाद

- 'सुधारवादी संविधानवाद' की प्रेरणा इस विचार से उत्पन्न होती है कि सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक है। यह दृष्टिकोण सामाजिक न्याय की गांधीवादी अवधारणा से बिलकुल अलग है। ऑस्टिन यह उल्लेख करते हैं कि गांधी का मानना था कि सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त करने की शुरुआत प्रत्येक व्यक्ति के नैतिक रूपांतरण से होनी चाहिए जो हर भारतीय के हृदय एवं मस्तिष्क से उत्पन्न हो और पूरे समाज में फैल जाए। सुधार सरकार द्वारा ऊपर से थोपे नहीं जाने चाहिए; बल्कि, एक परिवर्तित समाज ऐसा हो जहाँ किसी सरकारी विनियमन या निगरानी की आवश्यकता ही न हो।

- संविधान सभा में गांधीवादी संविधान का एक ऐसा वैकल्पिक प्रस्ताव दिया गया था जो यूरोपीय एवं अमेरिकी परंपराओं पर आधारित था और जिसमें प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रशासन की व्यवस्था की गई थी। यद्यपि इन संविधानों की शुरुआत के समय निष्पक्षता का दृष्टिकोण रखा गया होगा, किंतु समय के साथ-साथ इन्होंने नागरिक कल्याण के लिए अधिक ज़िम्मेदारी संभाली। 'उद्देश्य प्रस्ताव' ने सामाजिक क्रांति के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया, किंतु इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले उपायों की रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की।
- ऑस्टिन का दावा है कि वयस्क मताधिकार ने उन लाखों लोगों को सशक्त बनाया जो कभी अपने हितों के प्रतिनिधित्व के लिए दूसरों की इच्छा पर निर्भर थे। उनके अनुसार जहाँ मौलिक अधिकार लोगों एवं अल्पसंख्यक समूहों को सरकार की मनमानी व भेदभावपूर्ण कार्रवाई से बचाते हैं, वहीं संविधान के मौलिक अधिकार भाग के तहत तीन प्रावधानों का उद्देश्य व्यक्तियों को अन्य नागरिकों के अन्यायपूर्ण कार्यों से बचाना है।
- राज्य को नागरिकों की विशिष्ट स्वतंत्रता के उल्लंघन पर संविधान के प्रतिबंधों का पालन करने के साथ-साथ नागरिकों के अधिकारों की सामाजिक हस्तक्षेप से रक्षा करने के लिए अपनी सकारात्मक ज़िम्मेदारी को भी पूरा करना चाहिए। मौलिक अधिकारों का उद्देश्य सामाजिक क्रांति को बढ़ावा देते हुए एक ऐसा समाज स्थापित करना था जिसमें सभी नागरिकों को राज्य द्वारा या व्यापक स्तर पर समाज के द्वारा लगाए गए किसी भी दबाव या प्रतिबंध से समान रूप से स्वतंत्रता प्राप्त हो। इसे अस्पृश्यता से संबंधित व्यवहारों के निषेध (अनुच्छेद 17) और बंधुआ मज़दूरी व मानव तस्करी पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 23) के माध्यम से देखा जा सकता है।

- इसके अलावा, भारतीय संविधान अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सशक्तीकरण के लिए एक तंत्र के रूप में कार्य करते हुए उन्हें विधायी आरक्षण प्रदान करता है तथा इन समूहों के साथ-साथ सामाजिक व शैक्षिक रूप से वंचित वर्गों के लोगों के लिए शिक्षा तथा सरकारी नौकरियों में अनिवार्य आरक्षण की व्यवस्था करता है। सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्रोत्साहित करने वाले भारतीय संविधान के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित हैं-
- **'हम लोग':** भारतीय संविधान की प्रस्तावना का यह वाक्यांश सुधारवादी लक्ष्य को व्यक्त करता है। 'हम लोग' एक नई पहचान देता है और उन लोगों के लिए समान अवसर एवं स्थिति सुनिश्चित करता है, जिनकी पहचान पहले जाति, धार्मिक व जातीय व्यवस्थाओं के द्वारा तय की गई थी। इस पहचान का आधार एक 'व्यक्तिगत' पहचान है जो उस ढाँचे से उत्पन्न सिद्धांतों से अलग हो गई है। 'हम लोग' 1947 के स्वतंत्रता अधिनियम और कैबिनेट मिशन योजना की कानूनी बाध्यताओं से परे उल्लेखनीय बदलाव का प्रतीक है।

- ट्रान्सजेंडर व्यक्ति संरक्षण अधिनियम, 2019 (अधिकारों का संरक्षण) के तहत ट्रान्सजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन के लिए निम्नलिखित दंड निर्धारित किए गए हैं-
- **धर्मांतरण:** इस अधिनियम के तहत किसी भी व्यक्ति या संस्था, रोज़गार, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और सार्वजनिक स्थानों तक पहुँच जैसे मामलों में ट्रान्सजेंडर व्यक्तियों के साथ भेदभाव करना दंडनीय है।
- **शारीरिक, कामुक, मौखिक, भावनात्मक या आर्थिक दुर्व्यवहार:** यह अधिनियम ट्रान्सजेंडर व्यक्तियों के प्रति किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार को अपराध मानता है और दंड का प्रावधान करता है, जिसमें निम्नलिखित शामिल हो सकते हैं:

कुछ महीनों से दो साल तक की अवधि के लिए कारावास

- दोषी व्यक्ति को दंड का भागी भी ठहराया जा सकता है, जिसका निर्धारण न्यायालय द्वारा किया जाता है।

- **सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार:** किसी वर्गीकृत समाज में 'एक व्यक्ति, एक वोट, एक मूल्य' के सिद्धांतों पर आधारित सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को स्थापित करना एक क्रांतिकारी कदम था। भारत में पूर्ण नागरिकता केवल इस आवश्यकता के आधार पर प्रदान की जाती है कि व्यक्ति एक वयस्क सदस्य हो, जिस अवधारणा को समावेशन के स्पष्ट सिद्धांत के रूप में जाना जाता है।
- **अस्पृश्यता का उन्मूलन:** संविधान के अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को सभी स्वरूपों में अवैध घोषित किया गया है। इसका उद्देश्य अतीत को भुलाना और लंबे समय से चले आ रहे उन जातियों के निरादर को समाप्त करना था, जिन्हें समाज में अस्पृश्यता के कारण अपमान व भेदभाव का सामना करना पड़ा।
- **समानता का अधिकार:** भारत का संविधान औपचारिक समानता के विचार से परे जाकर स्पष्ट रूप से वास्तविक अर्थ में समानता के विचार को मान्यता देता है। इसके अनुसार वंचित वर्गों के हितार्थ जो विशेष सुरक्षात्मक कानून हैं, उनकी व्याख्या गैर-कानूनी भेदभाव के रूप में नहीं की जानी चाहिए।
- **राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व:** राज्य के नीति निदेशक तत्त्व सामाजिक क्रांति को अधिक स्पष्ट एवं संक्षिप्त रूप में परिभाषित करते हैं। इन अवधारणाओं के पीछे का उद्देश्य भारत की जनता को मुक्त करना, अर्थात् उन्हें सामाजिक एवं प्राकृतिक बाधाओं से आज़ाद करना था।

भारत में ए.आई. का भविष्य

संदर्भ

- दुनिया ऐसे बदलाव की गवाह बन रही है जहाँ कानूनों को अब तेज़ी से बदलती तकनीक के साथ विकसित होना चाहिए। प्रोफाइलिंग एवं आपराधिक विवेचना में ए.आई. के निहितार्थों पर गहराई से विचार करने के साथ-साथ यह स्पष्ट हो जाता है कि ये तकनीकें बड़े अवसर व महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करती हैं। गोपनीयता, सुरक्षा एवं नवाचार के बीच संतुलन सुनिश्चित करने के लिए ए.आई. उपयोग को नियंत्रित करने वाले कानूनी ढाँचे आवश्यक हैं।

ए.आई. एवं प्रोफाइलिंग

- अधिकांश ए.आई. सिस्टम के केंद्र में प्रोफाइलिंग की अवधारणा है व्यवहार की भविष्यवाणी करने के लिए डाटा एकत्र करने की प्रक्रिया। चाहे वह ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म हो जो उत्पादों का सुझाव दे रहा हो या स्ट्रीमिंग सेवाएँ जो सामग्री की सिफारिश कर रही हों, ए.आई. उपयोगकर्ता प्रोफाइल पर निर्भर करता है जिसे व्यवहार के आधार पर लगातार अपडेट किया जा रहा है। यह डाटा-संचालित दृष्टिकोण न केवल उपयोगकर्ता अनुभव को बढ़ाता है, बल्कि गोपनीयता एवं व्यक्तिगत डाटा के दुरुपयोग के बारे में चिंताओं को भी सामने लाता है।
- डिजिटल पर्सनल डाटा सुरक्षा (DPDS) अधिनियम, 2023 सीधे इन चिंताओं को संबोधित करता है। व्यवहार संबंधी डाटा को पर्सनल डाटा के रूप में मान्यता देकर यह सुनिश्चित करता है कि उपयोगकर्ताओं के अधिकार सुरक्षित हैं। इसमें अपने डाटा को सही करने या मिटाने का अधिकार शामिल है, जो ए.आई. सिस्टम को यह सोचने पर मज़बूर करता है कि वे कैसे काम करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई उपयोगकर्ता अपने डाटा को मिटाने का विकल्प चुनता है तो यह सूचना की निरंतर धारा को बाधित करता है, जिस पर ए.आई. मॉडल व्यक्तिगत सेवाएँ प्रदान करने के लिए निर्भर करते हैं। यह उन व्यवसायों के लिए एक बुनियादी चुनौती प्रस्तुत करता है जिन्होंने डाटा एकत्रीकरण के आस-पास अपने प्लेटफॉर्म बनाए हैं।
- डी.पी.डी.एस. अधिनियम के तहत डाटा अधिकार अधिक सख्त होने के साथ-साथ व्यवसायों को 'गोपनीयता प्रथम' ए.आई. मॉडल की ओर बढ़ना होगा जो वैल्यू प्रदान करते हुए भी उपयोगकर्ता की सहमति का सम्मान करते हैं। अनुपालन और वैयक्तिकरण के बीच यह नाजुक संतुलन भारत में ए.आई. के लिए नई सीमा है। वैश्विक स्तर पर, इसी तरह के नियम उभर रहे हैं। यूरोपीय संघ में सामान्य डाटा सुरक्षा विनियमन का कंपनियों के डाटा को संभालने के तरीके पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

भविष्यसूचक पुलिसिंग एवं आपराधिक जाँच में ए.आई. की भूमिका

- ए.आई. के व्यावसायिक अनुप्रयोगों को व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है। कानून प्रवर्तन में इसकी भूमिका ज़ोर पकड़ रही है। भारतीय न्याय संहिता, 2023 आपराधिक मामलों में इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के उपयोग का मार्ग प्रशस्त करती है, जो जाँच में सहायता के लिए डिजिटल डाटा का विश्लेषण करने में ए.आई. की शक्ति को स्वीकार करती है। ए.आई. अब भविष्यसूचक पुलिसिंग में केंद्रीय भूमिका निभा सकता है।
- भारत में भारतीय न्याय संहिता, 2023 अपराध की भविष्यवाणी एवं डिजिटल फोरेंसिक में ए.आई. के उपयोग के लिए समान द्वार खोलती है। धोखाधड़ी का पता लगाने, साइबर अपराध की जाँच और यहाँ तक कि आतंकवादी गतिविधियों की निगरानी में सहायता करने के लिए ए.आई. बहुत अधिक सक्षम है। हालाँकि, ये कार्य जितने रोमांचक हैं, उतने ही जोखिम भी इसमें हैं।
- भारतीय न्याय संहिता (BNS)] 2023 कानून प्रवर्तन एजेंसियों को डिजिटल उपकरणों को ज़ब्त करने और जाँच के लिए व्यक्तिगत डाटा तक पहुँचने के लिए व्यापक अधिकार प्रदान करती है। हालाँकि, यह डिजिटल युग में अपराध का मुकाबला करने के लिए आवश्यक है, किंतु यह गोपनीयता के उल्लंघन के बारे में गंभीर चिंताएँ भी पैदा करती है।
- इसके अलावा, ए.आई. सिस्टम अचूक नहीं हैं। एल्गोरिथम में पूर्वाग्रह भेदभावपूर्ण परिणामों को जन्म दे सकता है, जो हाशिए पर स्थित समुदायों को असंगत रूप से प्रभावित करता है। ऐसे परिदृश्यों को सामने आने से रोकने के लिए एल्गोरिथम पारदर्शिता एवं न्यायिक निगरानी सुनिश्चित करना महत्त्वपूर्ण है।

ए.आई. की क्षमता

- ए.आई. की पूर्वानुमानित क्षमताएँ नई नहीं हैं। मानव व्यवहार का विश्लेषण करके, ए.आई. भविष्यवाणी कर सकता है कि अपराध कहाँ एवं कब घटित होने की संभावना है। इससे कानून लागू करने वाले घटनाओं के घटित होने से पहले उपाय कर सकते हैं। वाणिज्यिक क्षेत्र से कानून प्रवर्तन अनुप्रयोगों में यह परिवर्तन ए.आई. की सुधारवादी क्षमता को उजागर करता है। हालाँकि, इसके लिए कानून प्रवर्तन के उस तरीके में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव की भी आवश्यकता है जिसके अनुसार एजेंसियाँ संचालित होती हैं। ई-कॉमर्स में पूर्वानुमानित मॉडल पुष्टि की कुछ गुंजाइश बर्दाश्त कर सकते हैं, किंतु पुलिसिंग में किसी गलती का व्यक्तियों एवं उनकी स्वतंत्रता के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं।
- जैसे-जैसे ए.आई. तकनीक अधिक उन्नत होती जा रही है, कानून प्रवर्तन एजेंसियों को इस क्षमता का पूरी तरह से लाभ उठाने के लिए प्रशिक्षण एवं उपकरणों में निवेश करने की आवश्यकता होगी। उन्हें सत्ता के दुरुपयोग से बचने के लिए निष्पक्ष, पारदर्शी एवं जवाबदेह प्रणाली बनाने की भी आवश्यकता होगी।

नेशनल क्राइम एजेंसी (यू.के.) में ए.आई. का उपयोग

- यूनाइटेड किंगडम में नेशनल क्राइम एजेंसी एक शक्तिशाली केस स्टडी प्रस्तुत करती है। इस एजेंसी ने वर्ष 2019 से ऑनलाइन व्यवहार की निगरानी करके और संवेदनशील बच्चों की पहचान करके बाल शोषण से निपटने के लिए ए.आई. का उपयोग किया है। यह एक निष्क्रिय प्रणाली नहीं है; यह सक्रिय रूप से ट्रैक करती है कि बच्चे इंटरनेट के साथ कैसे इंटरैक्ट करते हैं और इस डाटा का उपयोग अपराधों के बढ़ने से पहले संभावित जोखिमों की पहचान करने के लिए करती है।

- ए.आई. का यह अनुप्रयोग दर्शाता है कि कैसे तकनीक का उपयोग सक्रिय पुलिसिंग घटना के बाद कार्रवाई करने की बजाय अपराध होने से रोकने के लिए किया जा सकता है। यह मॉडल भारत के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जहाँ साइबर बदमाशी, ऑनलाइन उत्पीड़न और यहाँ तक कि साइबर स्पेस में आतंकवादी भर्ती प्रयासों से निपटने के लिए समान दृष्टिकोण अपनाए जा सकते हैं।

चुनौतियाँ और आगे की राह

- डी.पी.डी.एस. अधिनियम, 2023 व्यक्तिगत डाटा की सुरक्षा के लिए एक ठोस ढाँचा प्रदान करता है, किंतु यह इस बारे में भी सवाल उठाता है कि उपयोगकर्ता की गोपनीयता का सम्मान करते हुए व्यवसाय कैसे नवाचार कर सकते हैं।
- ए.आई. का प्रभावी एवं नैतिक रूप से उपयोग करने के लिए कानून प्रवर्तन को प्रशिक्षित करना महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, पूर्वानुमान उपकरणों का नियमित रूप से ऑडिट किया जाना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वे पूर्वाग्रहों को बढ़ावा न दें। भारत में ए.आई. का भविष्य न केवल इसकी तकनीकी क्षमताओं से बल्कि इसके उपयोग को नियंत्रित करने वाले कानूनी एवं नैतिक ढाँचों से भी आकार लेगा।
- ए.आई. के उपयोग को नियंत्रित करने वाले कानूनों को भी उसी गति से आगे बढ़ना चाहिए। डी.पी.डी.एस. अधिनियम, 2023 एवं बी.एन.एस., 2023 एक कानूनी ढाँचा बनाने की दिशा में साहसिक कदम हैं जो व्यक्तियों के अधिकारों व गोपनीयता के साथ ए.आई. की अविश्वसनीय क्षमता को संतुलित करता है। चाहे व्यक्तिगत सेवाओं के माध्यम से या कानून प्रवर्तन के माध्यम से ए.आई. में हमारे जीने, काम करने एवं संवाद करने के तरीके को बदलने की शक्ति है, लेकिन इसके साथ बड़ी ज़िम्मेदारी भी आती है।
- भारत में ए.आई. का भविष्य, विशेष रूप से प्रोफाइलिंग एवं भविष्य-सूचक पुलिसिंग के क्षेत्रों में इस बात पर निर्भर करता है कि इन तकनीकों को कितनी अच्छी तरह से विनियमित किया जाता है।

श्रम विवाद समाधान पर भारतीय न्याय संहिता का प्रभाव

संदर्भ

- औद्योगीकरण ने प्राय: प्रबंधन एवं श्रमिकों के बीच एक खाई उत्पन्न कर दी है जो उत्पादन के साधनों के असमान स्वामित्व से उपजी है। इस असमानता के परिणामस्वरूप औद्योगिक टकराव एवं विवाद हुए हैं। इससे सामाजिक एवं आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए विवाद समाधान की एक प्रभावी प्रणाली की आवश्यकता महसूस हुई। भारत में इस उद्देश्य को श्रम कानूनों की एक शृंखला के माध्यम से आगे बढ़ाया गया है जिसमें 1947 का औद्योगिक विवाद अधिनियम (IDA) और वर्ष 2020 का औद्योगिक संबंध संहिता (IRC) शामिल है। इसका उद्देश्य सुलह, मध्यस्थता एवं न्यायनिर्णयन जैसी प्रणालियों के माध्यम से विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करना है। इस पृष्ठभूमि में औपनिवेशिक युग की भारतीय दंड संहिता (IPC) से भारतीय न्याय संहिता (BNS) का हाल ही में अधिनियमित होना एक महत्त्वपूर्ण बदलाव को दर्शाता है जिसके प्रावधान श्रम विवाद समाधान सहित विभिन्न कानूनी क्षेत्रों में प्रभाव डालते हैं।

विवाद समाधान : भारत में श्रम मुद्दे

- भारत में श्रम विवाद पारंपरिक रूप से विभिन्न केंद्रीय अधिनियमों से प्रभावित रहे हैं, जैसे 1947 का औद्योगिक विवाद अधिनियम (IDA)] 1926 का ट्रेड यूनियन अधिनियम और 1946 का औद्योगिक रोज़गार (स्थायी आदेश) अधिनियम। इन्हें कई श्रम कानूनी विधानों को सरल बनाने और औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के प्रयास में औद्योगिक संबंध संहिता (आई.आर.सी.) 2020 के अंतर्गत शामिल किया गया था।
- इन विभिन्न अधिनियमों के तहत यथास्थिति दृष्टिकोण से श्रम विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करना, सुरक्षा उपायों को बढ़ावा देना और नियोक्ता तथा श्रमिक के बीच सौहार्द बनाए रखना रहा है। यह अधिनियम की धारा 3 एवं 10ए में परिलक्षित होता है जो औद्योगिक विवादों को हल करने के लिए एक तंत्र के रूप में समाधान व स्वैच्छिक मध्यस्थता प्रदान करता है।

- आई.आर.सी. ने दो महत्त्वपूर्ण सुधार लागू किए हैं। सर्वप्रथम श्रम कानूनों के तहत सभी पिछले संस्थानों को बरकरार रखा गया है, समाधान बोर्ड, कोर्ट ऑफ इंक्वायरी और लेबर कोर्ट को छोड़कर। दूसरे, इसने राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों से जुड़े मामलों को छोड़कर अधिनियम की धारा 10(1) के तहत कुछ श्रम विवादों को संदर्भित करने या न करने के लिए पूर्व सरकारी अनुमोदन की आवश्यकता को समाप्त कर दिया है।

आई.आर.सी. एवं आई.डी.ए. के तहत श्रम विवाद समाधान को तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के विवादों को सुलझाने के लिए द्विपक्षीय मंच (शिकायत निवारण समिति एवं कार्य समिति शामिल);
- निपटारा, जहाँ एक तटस्थ तीसरा पक्ष कामगार एवं नियोक्ता के बीच मध्यस्थता करता है और
- कोर्ट का न्याय निर्णयन
- विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाने का यह तरीका अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप है, जिन्हें भारत जैसे मध्यम आय वाले देश में विकास के माहौल को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक माना गया है।

आई.डी.ए. के साथ चुनौतियाँ

- हालाँकि, आई.आर.सी. का उद्देश्य विवादों को सुलझाने के लिए सौहार्दपूर्ण दृष्टिकोण को बढ़ावा देना है, किंतु इस संहिता के तहत श्रम विवादों को हल करने के लिए प्रयोग किए जाने वाली प्रणालियों में कार्यान्वयन संबंधी विभिन्न समस्याएँ हैं। यह संहिता केवल औपचारिक क्षेत्र में विवादों को हल करने का प्रावधान करती है, जबकि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को इससे बाहर रखा गया है। इसका मतलब यह है कि विभिन्न घरेलू और कृषि श्रमिकों, जिनमें विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म (गिग वर्कर) पर काम करने वाले लोग भी शामिल हैं, को आई.आर.सी. के तहत विवाद समाधान तंत्र तक पहुँचने से रोका गया है।

- आई.आर.सी. ने भारत में गुणवत्तापूर्ण समझौताकर्ताओं की कमी के बावजूद न तो समझौता प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया और न ही ऑनलाइन समझौता के प्रावधानों को शामिल किया। बी.एन.एस. श्रम विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाने की इस दृष्टिकोण से बदलाव की ओर बढ़ रहा है और कठोर दंड का प्रावधान किया है।

श्रम विवाद

- आई.आर.सी. एवं पिछले कानूनों के तहत श्रम विवादों के समाधान के विपरीत बी.एन.एस. ने दंडात्मक प्रावधानों की एक शृंखला प्रस्तुत की है जो श्रम विवाद समाधान के संबंध में औपचारिक क्षेत्र में नियोक्ताओं एवं कर्मचारियों को प्रभावित करते हैं। नियोक्ताओं के लिए बी.एन.एस. एक अधिक कठोर कानूनी ढाँचा प्रस्तुत करता है जो श्रम कानूनों के अनुपालन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता रखता है, जबकि अवैध हड़ताल या विरोध प्रदर्शन जैसे गैर-कानूनी श्रम कार्यों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है।
- श्रम विवादों में एक विवादास्पद मुद्दा विरोध एवं हड़ताल से संबंधित है जिसका उपयोग श्रमिकों ने औद्योगिक विवादों के मामलों में अपनी मांगों को पूरा करने के लिए किया है। गुजरात स्टील ट्यूब्स बनाम मज़दूर सभा में न्यायमूर्ति भगवती ने श्रमिकों के लिए उनके महत्त्व को पहचानते हुए व्यापार विवाद में 'सामूहिक सौदेबाज़ी' के साधन के रूप में हड़ताल की उपयोगिता पर ज़ोर दिया।
- इसलिए, यदि सदस्यों द्वारा किए गए कार्य यूनियन के लाभ के लिए औद्योगिक विवाद के संबंध में आगे बढ़ रहे हैं तो औद्योगिक संबंध संहिता ट्रेड यूनियन के सदस्य को कुछ सिविल और आपराधिक मुकदमों में कानूनी कार्यवाही से प्रतिरक्षा प्रदान करती है। इसके विपरीत, बी.एन.एस. की धारा 194 सार्वजनिक स्थानों पर हिंसक व्यवहार (दंगा) करने के लिए दंड निर्धारित करती है।

व्यावहारिक चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाएँ

- हालाँकि, बी.एन.एस. श्रम विवाद समाधान के लिए एक मज़बूत ढाँचा प्रदान करता है, किंतु यह कार्यान्वयन की चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है। श्रम अपराधों का अपराधीकरण पहले से ही तनावपूर्ण न्यायिक प्रणाली में लंबित मामलों को और बढ़ा सकता है। नियोक्ता, विशेष रूप से छोटे उद्यम, नई कानूनी जटिलताओं से निपटने के लिए संघर्ष कर सकते हैं।
- बी.एन.एस. की व्याख्या एवं प्रवर्तन में न्यायपालिका आवश्यक होगी क्योंकि धारा 194 जैसे प्रावधान विभिन्न श्रम मामलों में लागू होते हैं। इस प्रकार, बी.एन.एस. का व्यावहारिक प्रभाव न्यायिक व्याख्या के माध्यम से विकसित होगा, जो उभरती चुनौतियों एवं मामलों के जवाब में श्रम परिदृश्य को आकार देगा।

श्रम विवाद एवं बी.एन.एस. : भावी दशा-दिशा

- बी.एन.एस. भारत के श्रम विवाद समाधान के दृष्टिकोण में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है, जो पारंपरिक समाधान के तरीकों से अधिक दंडात्मक ढाँचे की ओर बदलाव को दर्शाता है। श्रमिकों की सुरक्षा को बढ़ाकर और नियोक्ताओं पर कठोर दंड लगाकर बी.एन.एस. कुछ श्रम-संबंधी अपराधों को आपराधिक के रूप में पुनर्वर्गीकृत करता है, जिसका उद्देश्य भारत के श्रम कानूनों को अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाना है।
- भारत में श्रम अधिकारों और कार्यस्थल सुरक्षा को लेकर लगातार चर्चा हो रही है। ऐसे में बी.एन.एस. के निहितार्थ महत्त्वपूर्ण हैं। कठोर कानूनी प्रावधानों के कारण नियोक्ताओं को अधिक अनुपालन की आवश्यकता होती है और इससे वैध श्रमिक विरोध और सामूहिक सौदेबाज़ी के प्रयासों को दबाने का जोखिम होता है। यह बदलाव श्रम परिदृश्य के भीतर प्रतिकूल संबंधों को अधिक बढ़ा सकता है जो पहले के कानूनों द्वारा स्थापित ऐतिहासिक रूप से सौहार्दपूर्ण विवाद-समाधान तंत्र को चुनौती देता है।